समर्पण

आत्म-बोध है उन्हें समर्पित-
जो कविता में जगते।
मेरे गीतों के छन्दों में-
प्रतिपल रहते रमते!।

आए कुछ दिन पास रहे फिर-
बिछुडे प्यार जगा के!
उन्हें समर्पित करता हूँ मैं-
मन-से गीत सुना के!!

माणकचन्द रामपुरिय

ISBN 81-86842-25-X

© महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

सस्करण प्रथम 1998

प्रकाशन कलासन प्रकाशन
बीकानेर (राज)

लेजर प्रिट श्री करणी कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स
बीकानेर (राज)

मुद्रक कल्याणी प्रिन्टर्स
माल गोदाम रोड, बीकानेर

मूल्य 100 रुपये

Aatm-Bodh
(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria
Page 128 Price 100/

स्वभावोद्‌गार

आत्म-बोध-एक अभिव्यक्ति है और प्रयोग भी। अभिव्यक्ति इस अर्थ में कि मैंने आत्मानुभूतियों को यथार्थत वाणी देने की चेष्टा की है। हृदय तो एक सवेदनशील दर्पण है।

अपने-पराये एव आह्‌लादकारी-कष्टकारी बिम्ब हृदय-पटल पर पड़ते ही रहते हैं। इनमें कुछ रेखाएँ सामयिक होती हैं और कुछ आकृतियाँ क्षणोपरान्त समाप्त हो जाती हैं। इनके विपरित ऐसी रेखाएँ भी मन-मुकुट पर अकित होती है, जो दीर्घकालिक होती हैं। ये रेखाए कभी शुष्क नहीं होतीं।

जब भी नीलाकाश में बादल घिरते है, इनके साथ ये रेखाएँ कोयल का पचम स्वर बन जाती हैं। इन रेखाओं की अजीब स्थिति है। ये कभी चकवा-चकारे बनती हैं तो कभी खिली कौमुदी के आँगन में महारास रचाती हैं। प्रकृति के साथ हर रूप-रग इन्हें स्वीकार्य रहता है। आत्म-बोध में इन्ही क्षणों को अपनत्व प्रदान किया गया है।

इस सबध में एक और तथ्य भी है जिस पर ध्यान जाना अवश्यमभावी है। जीवन में आघातों की कमी नहीं। खास कर 'आत्म-बोध का कवि अघातों पर आघात सहता रहा। पता नहीं भगवान की क्या इच्छा है।

उसके मर्म-मुकुट ने अपनी कराह में भी सात्विकता की राह देखी है। अध्यातम की अनुगूँज उसके हर पथ को प्रशस्त करती रहीहै। हर क्षण वह गुरू कृपा के अक्षय प्रसाद के बल से प्रकृति की अखण्ड शक्ति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता रहा है।

आत्म-बोध अनुभूतियों का अक्षय कोष है। प्रभु के पावन चरणों में अर्पित भाव-सुमनों का अभिव्यजन है।

जहाँ तक प्रयोग की बात है, मैं यह निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ कि इस में कोई पुष्ट कथानक न होते हुए भी सम्पूर्ण जीवन को उद्‌घाटित किया गया है। सम्भव है परम्परावादी इसे महाकाव्य न माने। वे महाकाव्य के लिए नायक-नायिका की तलाश करें। अन्तर्कथाओं की खोज करें-जो इसमें नहीं मिलेंगी। किन्तु यह सत्य है कि आत्मबोध प्रभावात्पादकता की तुला पर शायद सतोल ही

लगे रसात्मकता इसका प्रधान गुण है। अपने अन्य महाकाव्यों में भी इन तथ्यों को मैंने रेखाकित किया है। इसी सन्दर्भ में यह कृति अभिव्यक्ति के साथ-साथ एक प्रयोग की सीमा में भी आती है।

आत्म-बोध के प्रणयन से मुझे यथेष्ट सतोष हुआ है। यह कृति यदि मेरे पाठकों की रसात्मिका वृत्ति को भी किंचित उद्बुद्ध कर सकी तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

साहित्य मनीषी आदरणीय भाई श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी 'सदय' ने अपना अभिमत देकर पुस्तक के महत्व को द्विगुणित कर दिया उसके लिए अनेकश धन्यवाद।

रामपुरिया भवन
रामपुरिया मार्ग
बीकानेर-334001

माणकचन्द रामपुरिया

पहला सर्ग

अब तक सब कुछ सहता आया-
कभी नहीं पल भर भरमाया,
मुझको निश्चय प्यार करोगे-
अपने अकों में भर लोगे।

यों तो जीवन बडा कठिन है-
इस पर जाने कितना ऋण है,
काँटों में प्रत्येक कदम है
दृग के आगे तम-ही-तम है।

जिस दिन तुम से विलग हुआ मैं-
इस धरती को तभी छुआ मैं,
माटी का तन माटी का मन-
माटी पर माटी का जीवन।

मात्र यही देकर भेजा है-
मैंने ही जिसे सहेजा है,
इससे अलग नहीं कुछ चाहा-
हुआ यज्ञ में सब कुछ स्वाहा।

मानव है मानव की गरिमा-
सदा जानता इसकी महिमा,
लेकिन परवश बना भुवन में-
जकड गया हूँ दृढ बन्धन में।

चाहा पर अब छूट न पाता-
बन्धन नित-नित बढता जाता,
है विवेक सब समझ रहा हूँ-
सब कुछ कितनी बार कहा हूँ।

लेकिन जैसे मकडे अपने-
मिटा न पाते मन के सपने,
बुनकर जाला स्वय उलझता-
जान-बूझ, कुछ नहीं समझता

वैसे ही मैं देख थका हूँ-
डेग-डेग पर सदा रूका हूँ,
कभी स्वय को समझाता हूँ-
कभी जगत को बतलाता हूँ।

लेकिन कोई पथ न मिलता-
मन में कोई फूल न खिलता,
पीडाओं का भार बडा है-
किन्तु अकेला जीव खडा है।

समझ रहा है, किन्तु विवश है-
आँधी-अन्धड-धुन्ध-उमस है,
कैसे पार करे अब कोई ?
चित्त-वृत्ति है खोयी-खोयी।

कितना सकट झेल रहा हूँ-
अगारों से खेल रहा हूँ,
लगता फिर भी अन्त नहीं है-
खिलता कहीं दिगन्त नहीं है।

अपने को जब देखा पाया-
सकट हर क्षण बढ्ता आया,
उनकी गिनती बडी कठ्नि है-
दृग में घिरा सदा दुर्दिन है।

★ ★ ★

ऐसे में भी प्रभु पर मेरा-
है विश्वास, खिले सबेरा,
अच्छे दिन भी ठ्हर न पाए-
बुरे नहीं रुकने को आए।

किन्तु सदा माटी का यह तन-
होकर निर्बल करता क्रन्दन,
जागो हे अखिलेश दिवाकर-
भरो तिमिर को ज्योति उजागर।।

दूसरा सर्ग

मैंने जितना सहा धरा पर–

कौन भला सह पाया ?

किसने धन–सकट के आगे–

मस्तक नहीं झुकाया ?

रहा देखता, अम्बर ने भी-
कितने बज्र गिराए,
अदने मानव पर भी भीषण-
आँधी-अन्धड आए।

धरती डोली पिघल-पिघल कर-
आग धरा पर बरसी,
एक बूँद के लिए चातकी-
अब तक कितनी तरसी।

चले पवन उन्चास किसनी ने-
उनको कभी न रोका,
तम के घने कुहासे तक को-
नहीं किसी ने टोका।

विपदाओं के मेह यहाँ पर-
सब दिन रहे घुमडते,
एक अकेला मैं था जिस पर-
बादल रहे उमडते।

किसी छोर से कहीं न कोई
आशा पड़ी दिखाई,
जो भी सम्पति मिली भाग्य से-
बाधा बनकर आई।

फिर भी विचलित हुआ न मन से–
सब कुछ खुद ही झेला,
मैं अपनी गन्तव्य राह पर–
सब दिन रहा अकेला।

अपने और पराए–सबको–
बहुत निकट से देखा,
सब की आँखों में ज्वाला की–
दिखी विरोधी रेखा।

सभी चाहते थे पथ पर मैं–
टूट बिखर गिर जाऊँ,
कभी नहीं जीवन का कोई–
सपना सत्य बनाऊँ।

भौतिकता से हटकर मैंने–
सात्विक जीवन पाला,
किन्तु यहाँ भी रही घेरती–
विपदाओं की ज्वाला।

गंगाजल से मन–मानस तक–
सुनता, शीतल होता,
कलुष अपावन जीवन का जल–
पुण्य प्रदायक धोता।

लेकिन यह भी मेरे मन को-
शान्ति नहीं दे पाई,
इसके सम्मुख भी जा-जाकर-
मैंने विनय सुनाई।

कोई जो हैं भाग्यवान वे-
सब कुछ क्षण में पाते,
उनके आगे पत्थर क्षण में-
सोना ही बन जाते।

लेकिन मेरी बात निराली-
कुछ भी हाथ न आता,
छूते ही मेरा सोना भी-
मिट्टी ही बन जाता।

जहाँ-जहाँ भी हाथ लगाया-
सदा निराशा आई,
खिले विमल अरूणोदय में भी-
तिमिर घटा नित छाई।

लेकिन ऐसे में भी मैंने-
मन सयम से साधा,
विलग न हो क्षण भर यह पथ से-
सात्विकता से बाँधा।

पीछे मुडकर जब भी देखा–
दिखी सघन अंधियारी,
उडती रही चतुर्दिक मेरे–
सकट की चिनगारी

यों तो सब कहते हैं मैंने–
फूलों को अपनाया,
मेरे जीवन में जडता का
साक्ष्य नहीं हो पाया।

लेकिन यह सब ऊपर की है–
बातें महज ठठोली,
झूठे सपने क्या भर पाए–
कभी सत्य की झोली।

जो खाली है उसके कोई–
कभी नहीं भर पाया
कहने को सब ऊपर–ऊपर–
यों ही सब समझाता।

अपना हाल यही है हमने–
जीवन को है देखा,
कदम–कदम पर यहाँ खिची है–
प्रलय–अग्नि की रेखा।

कोई इसको पार नहीं कर-
सकता सहज हृदय से,
घोर तिमिर तक तना हुआ है-
इसके अस्त-उदय से।

लेकिन मैंने इस पर भी है-
स्नेह दृष्टि दौडायी,
जहाँ-जहाँ भी अवसर जाया-
नयी मूर्त्ति दिखलायी।

कटुता का तो रूप भयकर-
छाया ही था मन पर,
इससे भिन्न स्नेह-रस-सिचित-
जागा चित्र उभर कर।

उसी चित्र को आगे कर के-
अपना पथ सजाया,
सोए कुटिल क्षणों को मैंने-
गीतों से बहलाया।

कोई चाहे जो भी कह ले-
गीत हृदय के जागे,
बने पथ के सजग-सचेतक-
जडता के भय त्यागे।

★ ★ ★

मेरी इच्छा क्या है? सब है-
अन्तर-तर की भाषा,
कदम-कदम पर प्रभु की इच्छा-
करुणा की परिभाषा।।

तीसरा सर्ग

सब कहते हैं नियति कठिन है-
सदा कठिन तप-जाप,
कठिन कर्म का बन्धन भू पर-
सहना भव का ताप।

जो भी जितना कठिन रहा है-
उसमें किया प्रवेश,
अपनी खातिर छोडा मैंने-
नहीं कहीं अवशेष।

हर सकट में सब लोगों ने-
देखा मेरा काम,
वक्त पडे पर लिया सभी ने-
खुल कर मेरा नाम।

लेकिन इससे क्या होता है-
कभी न मन की पीर,
क्षणभर को भी बदल न पाई-
मेरी भाग्य लकीर।

वही दृश्य औं वही बात थी-
मेरे चारों ओर,
जिस पकिल में घिरा हृदय था-
मन से क्षोभ-विभोर।

मन में तृष्णा जाग रही थी-
मन था बडा अधीर,
खोज रहा था किसी कुण्ज में-
शीतल सुरभि-समीर।

सोच रहा था कोई आकर–
गाए नूतन गीत,
गूँजे मरु के शून्य कक्ष में–
स्नेहिल मधु–सगीत।

मिटे कुहासा, खिले ज्योति का–
कोई निर्मल द्वार,
मिले कोकिला को भी अपने–
मन के 'पी' का प्यार।

चातक को अपने प्रियतम का–
मिले बूँद भर नीर,
रहे दृगों के सम्मुख खिलती–
मधु–माधव–तस्वीर।

अमराई में पी–पी का स्वर–
गूँजे चारों ओर,
प्रेमिल क्षण में रहें हृदय से–
सब जन भाव विभोर।

नहीं कहीं हो कोई कल्मष–
किसी तरह का शोक,
रहे न कुछ उत्पात प्रकृति का–
नियति करे सब रोक।

समरसता-की भाव-भूमि पर-
सब का हो विश्राम,
हृदय-हृदय में रहें गूँजता-
केवल प्रभु का नाम।

हुआ जहाँ विश्रृखल कोई-
रही नहीं फिर शान्ति,
मिटी अचानक उस आनन से-
सुखद विभा की कान्ति।

यही नियम है सिद्ध प्रकृति का-
यही सृष्टि आधार,
समरसता के कारण धरती-
करती ऋतु-श्रृगार।

यही तत्त्व है दृढ समाज के-
उद्भव की नवजोत,
समरसता के रस से रहता-
जीवन ओतप्रोत।

व्यष्टि-व्यष्टि से है समष्टि का-
भू पर शुभ अस्तित्व,
व्यक्ति सुखी तो, है समाज का-
सुखमय सारा तत्त्व।

इसीलिए सब कहते जन-जन-
गाएँ सुख के गीत,
हृदय-हृदय में जागे अविरल-
प्राणिमात्र की प्रीत।

लेकिन सपनों से रह जाते-
मन के सारे भाव,
प्रकृति नटी पर नहीं कहीं है-
अपना कभी प्रभाव।

सूत्रधार है वहीं उसी का-
चलता है सब खेल,
उसके कारण ही होता है-
भू पर बिछुडन-मेल।

कोई उससे अलग नहीं है-
सब पर उसका भार,
उसके कारण सुख औ मिलती-
पीडा अपरम्पार।

कोई बन्धन काट न सकता-
भाग न सकता दूर,
हर प्राणी है उसके कारण-
अपने से मजबूर।

कोई उसका कर न सका है-
जग में कभी विरोध,
जब भी कोई व्यतिक्रम होता-
लेती वह प्रतिशोध।

मानव-तन की सकल इद्रियाँ-
उसके ही वशीभूत,
सभी तरह के भाव उसी से-
होते सदा प्रसूत।

सत-रज-तम से निर्मित तन है-
सब में है सम-भाव,
इसीलिए जीवन चलता है-
लेकर पुण्य-प्रभाव।

समरसता में कमी हुई तो-
जीवन बना उदण्ड,
अच्छे तत्त्व नहीं रह पाते-
होकर कभी अखण्ड।

सभी बिखर जाते हैं क्षण में-
ज्यों सेमर की तूल,
कभी न करते सुरभित भव को-
ऐसे सूखे फूल।

पाँच तत्त्व की काया है यह–
सब मिलकर हैं एक,
समरसता के कारण सब की–
आज बनी है टेक।

जहाँ नहीं रह पाती होता–
भव का विकृत रूप,
अलग–अलग सब तत्त्व मनुज को–
कर देते विद्रूप।

यही तत्त्व जब रहता सब में–
अपने आप अखण्ड,
तभी मनुज सह सकता भू पर–
भव का ताप प्रचण्ड।

अलग–अलग सब शव जैसे हैं–
एक साथ शिव–मूर्त्ति,
यही रूप मगल कारक है–
भरता सब में स्फूर्त्ति।

इसीलिए आवश्यक है, दें–
समरसता को मान,
इसके बल पर ही होता है–
जीवन का उत्थान।

★ ★ ★

जान रहा सब, किन्तु नियति है-
कितनी क्रूर-कठोर,
इसके सम्मुख नहीं चला है-
किसी मनुज का जोर।।

चौथा सर्ग

सब के ऊपर एक शक्ति है-
सात्विकता की परम भक्ति है।
वही सृष्टि का एक नियता-
पालन-कर्त्ता औं फिर हता।

उसके सम्मुख सब हैं दर्शक-
चुम्बक वही सभी का कर्षक।
उसको कोई टाल न सकता-
सूत्रधार वह सब कुछ रचता।

जो भी कहते हम हैं करते-
मिथ्या दम्भ भुवन में भरते।
होता क्या कुछ भी करने से?
वृथा सभी कुछ है डरने से।

यही सत्य हैं हम सब जागें-
अन्तर की दुर्बलता त्यागें।
जो भी आए, उसको झेलें-
नियति समझकर सब से खेलें-

सुख-दुख आते, रहते प्रतिक्षण-
हँसी-खुशी औं रोदन-क्रन्दन।
सब दिन चलते हैं इस भू पर-
मानव पुतला बना निरतर।

बस कुछ सहता आह न भरता-
प्रभु का सब उपहार समझता।
सुख भी उसके दुख भी उसके-
देखो सब कुछ मन में घुस के।

अलग जभी निर्लिप्त रहोगे-
भार न कोई कभी सहोगे।
कमल-पत्र ज्यों लिप्त न होता-
जल से ज्यों सम्पृक्त न होता।

वैसे ही तुम अलग रहोगे-
मुक्त गगन के विहग रहोगे।
बाँध न पाएगा फिर कोई-
नहीं रहेगी इच्छा सोई।

सभी कामना पूर्ण रहेगी-
सात्विकता की ज्योति जगेगी।
जीवन में समता सरसेगी-
भावों की वरूणा बरसेगी।

लेकिन यह सब बडा कठिन है-
जीवन का क्षण तुनुक तुहिन है।
लेकिन मानव क्या कर पाता?
सोच-विचार धरा रह जाता।

होता वह जो नियति दिखाती-
जैसा-जैसा नाच नचाती।
पाप-पुण्य जो भी करते हैं-
जन्म-मरण के ऋण कटते हैं।

जाने कितने जन्म हुए हैं-
कैसे-कैसे शिखर छुए हैं।
बडा कठिन है लेखा-जोखा-
लगता सब कुछ केवल धोखा।

जो भी करते मन बहलाते-
आगे की बस राह बनाते।
अब तक सोए और न सोएँ-
सब कुछ खोए और न खोएँ।

इसीलिए शुभ पथ पर बढ्ते-
शिखर-शिखर पर निर्भय चढ्ते।
होना था जो हुआ यहाँ पर-
जाना है पर, हमें जहाँ पर।

उसका कुछ तो ध्यान करेंगे-
कब तक तम में व्यग्र डरेंगे?
ऐसे कुछ तो काम न होगा-
भव में सार्थक नाम न होगा।

मत समझो जो आज किया है।
वही नियति ने आज दिया है।
जन्म-मरण तो चलता आता-
है अखण्ड जीवों की गाथा।

कब से कौन चला आता है?
कौन किसे कब समझाता है?
कोई इसको जान न पाया-
तर्कातीत सदा बतलाया।

बडे-बडे ऋषि औं मुनियों ने-
भव के श्रेष्ठ सभी मुनियों ने-
शोध अनेकों बार किए हैं-
अपना जीवन-दान दिए हैं।

किन्तु धुन्ध विख्यात सदा है-
यह रहस्य अज्ञात सदा है।
इसका कोई ज्ञान न पाया-
सब ने केवल भ्रम फैलाया।

अगर कदाचित् कोई मानव-
समझा इस रहस्य का उद्‌भव-
तब फिर वह कुछ बोल न पाया-
वह तो प्रभु में स्वय समाया।

जो अधकचरे देख न पाए-
किसको कैसे क्या दिखलाए?
लेकिन उनका जोर बढा है-
उनका जादू शीश चढा है।

वे ही भ्रम फैलाते जग में-
मिलते सब को विस्तृत मग में।
तरह-तरह की राह बताते-
नये-नये उत्पात मचाते।

सावधान इनसे रहना है-
अपना पथ स्वय गढना है।
उठती है जो ध्वनि अन्तर से-
रोम-रोम के निर्मल स्वर से-

उसी सूत्र को धरो हृदय से-
उसको जोडो भाग्य-उदय से।
यही रूप है शुद्ध प्रणव का-
यही मात्र उत्कर्ष विभव का।

यहाँ ज्योति-सद्भाव जगेगी-
दृष्टि-सृष्टि सब एक लगेगी।
रह न सकेगी कहीं विषमता-
स्वय जगेगी सात्विक समता।

भव का है उत्कर्ष यहीं पर-
जीवन का है हर्ष यहीं पर।
वीतराग-सा गीत सुनाओ-
जड-चेतन में प्राण जगाओ।

तुम से कुछ भी अलग नहीं है-
वन पर्वत भी विलग नहीं है।
लेकिन इस पर ध्यान न लाना-
इसके फल पर मन ललचाना।

आज वृक्ष जो लगा रहे हो-
यह प्रकाश जो जगा रहे हो।
इसका फल पाओगे निश्चय-
स्वय भविष्य करेगा निर्भय।।

पाँचवा सर्ग

वर्त्तमान के साथ सदा ही-
लोग-बाग हैं जीते,
समय और असमय में वे ही-
कटु-मधु रस हैं पीते।

अपने-अपने मन से सब जन-
सब भावार्थ समझते,
अपने मन के निहित भाव को-
सब आरोपित करते।

कोई कहता-पुण्य-कर्म का-
फल क्यों दारूण दुखमय?
पुण्य किया जीवन-भर लेकिन-
द्रवित नहीं करूणामय।

कोई कहता-व्यथा कथा ही-
पुण्य-पुरूष का लेखा,
पुण्य-व्रती को सुख-सुविधा में-
नहीं किसी ने देखा।

कोई कहता-पुण्य-पुरूष ही-
जीवन में सब सहते,
भौतिकता के महाचक्र में-
रहते सब दिन दहते।

कोई कहता-सदा झूठ है-
पाप-पुण्य की बातें,
सदा पुण्य करने वाले ही
सहते सब की घातें।

जो भी जो कुछ कह जाते हैं-
कहने दो मत रोको,
अपनी-अपनी सभी मान्यता-
नहीं किसी को टोको।

लेकिन इतना याद रहे तुम-
एक धर्म ही मानो,
जन्म-मरण की गति विधियों को-
आज तनिक पहचानो।

शाश्वत सत्य यही है जग में-
जन्म-मरण नित चलता,
उदयाचल का सूर्य स्वय ही-
अस्ताचल में ढलता।

कितनी बार जनम कर भू पर-
मरण-वरण कर पाया,
कौन बताए कब-कब कोई,
कहाँ-कहाँ पर आया।

देह महज भारी है भू की-
मरणशील-गुणधारी,
भस्मिभूत कर देगी इसको-
छोटी-सी चिनगारी।

किन्तु देह के भीतर का मैं-
परम पुरूष का अंशी,
महाप्रलय में भी उसकी ही-
सदा बजेगी बंशी।

उस पर कोई घात न लगता-
एक रूप वह भू पर,
सदा वही रहता है भव में-
सुख दुख सब से ऊपर।

अस्त्र उसे कुछ बेध न सकते-
उसे न अग्नि जलाती,
पानी नहीं भिगोता उसको-
हवा नहीं भरमाती।

एक सत्य है वही कि जिस पर-
सारी दुनिया आश्रित,
वही शक्ति रहती है भू पर-
सब तत्त्वों में दीपित।

जिसने सब कुछ तन को माना-
वही भरम में रहता,
दुख-सुख का सब भार हृदय पर-
वही मनुज है सहता।

लेकिन जिसने खुद को जाना-
जो है नित अविनाशी
वही मनुज जग की हलचल में
रहता शान्ति-निवासी।

दृष्टि मनुज की सीमित है वह-
देख नहीं कुछ पाता,
अपनी सीमा में रहकर ही-
अपनी बात बताता।

लेकिन जिसकी आँख खुली है-
सब कुछ जिसके सम्मुख,
उसको कैसी हँसी-खुशी है-
उसको कैसा सुख-दुख।

दुख-सुख या देही का संकट-
क्षणभर को ही आते,
लेकिन अपने क्षणिक रूप में-
जन-जन को भरमाते।

यही समझने लगते प्राणी-
हम ही हैं सब कर्त्ता,
सृष्टि हमारी हम ही केवल
इसके हैं अपहर्त्ता।

लेकिन जिस दिन ज्योति उतरती-
आँख स्वय खुल जाती,
सब रहस्य जीवन का खुलता-
नयी किरण मुस्काती।

तब मानव द्रष्टा बन जाता-
एक किनारे रहता,
सुख-दुख का कुछ भार हृदय पर
कभी नहीं फिर सहता।

अशी है भीतर की आत्मा-
देख न उसको पाते,
लेकिन उसकी शक्ति प्राप्त कर-
शक्तिमान बन जाते।

इस अशी को कैसे सुख-दुख-
कैसी विजय-पराजय,
सत्य रूप वह सदा प्रभासित-
सब तत्त्वों में अक्षय।

पाप-पुण्य कुछ वहाँ नहीं है-
नहीं वहाँ कुछ दुविधा,
एक रूप वह सत्य अखण्डित-
सब साधन की सुविधा।

उसका केवल ध्यान करें औ-

उसका ही गुण गाएँ,

उसी शक्ति को वरण करें हम-

जीवन का सुख पाएँ।

★ ★ ★

क्षण भर का क्या रोना-धोना-

परम शक्ति के आगे,

सत्य-पुरुष के चरणों पर ही-

अपना सब कुछ त्यागे।।

छठा सर्ग

ऊषा जब आती है भू पर-
सादर शीश नवाता,
सूर्य देव को वन्दन कर के-
जीवन का सुख पाता।

मानव है छोटा-सा पुतला-
लेकिन सब कर सकता,
अपना परम विकास जगा कर-
पर्वत पर चढ सकता।

सभी देवता ऋषि-मुनियों ने-
सब को सदा जगाया,
महावीर तीर्थंकर ने भी-
सच्चा पथ बताया।

सब ने कहा-मनुज खुद अपने-
श्रम से राह बनाए,
सत्य जाहाँ भी पडे दिखाई-
अपना पाँव बढाए।

तप-साधन से जाग स्वय नर-
ऊँचा पर पा जाता,
अपने बल से उच्च शिखर पर-
मानव ही है आता।

किसी योनि में अन्य कहीं पर-
ऐसी बात नहीं है,
ज्ञानी जन को किसी तरह का-
कुछ उत्पात नहीं है।

उनका जीवन समरस रहता–
शान्ति सदा मुस्काती,
उसमें विभ्रम की कोई भी–
रेखा उभर न पाती।

शीत–ग्रीष्म औ झझानल में–
कभी न विचलित होते,
परम सत्य की विमल ज्योति में–
रहते जगते–सोते।

सुख–दुख का कुछ भावन उनके–
आनन पर दिख पाता,
उदयाचल के बाल सूर्य–सा–
रहता नित मुस्काता।

★ ★ ★

लेकिन हम जगती के प्राणी–
कुछ भी जान न पाए,
क्षणभर के आघातों पर ही–
सब दिन रोए–गाए।

देख रहा हूँ पीछे मुडकर–
जो कुछ जैसे बीता,
क्या बतलाऊँ हारा किस क्षण–
और कहा पर जीता।

हार-जीत की बातें केवल-
दुनया के हित कहता,
यों तो सब कुछ चुपके-चुपके-
रहा भुवन में सहता।

कितने भीषण बज्र गिरे पर-
तनिक नहीं मन डोला
कविता रानी के सम्मुख ही-
अपना अन्तर खोला।

कविता ही है मेरी सब कुछ-
बात इसी से करता,
इसका स्नेहिल प्रेम हृदय में-
बल पौरूष सब भरता।

जब भी मन उद्विग्न हुआ है-
पास इसी के आया,
इसने माँ-सी लोरी गा कर-
मुझको सदा जगाया।

अब तो एक यही है मेरी-
सब कुछ-भाग्य-नियता,
इसके कारण ही जग कहता-
मुझको भी गुणवन्ता।

सब कुछ छुटे किन्तु हृदय से-
कविता छूट न पाए,
सर्वशक्ति के आगे सब दिन-
कहता शीश झुकाए।

★ ★ ★

अपनी गाथा किसे सुनाऊँ-
इसको कौन सुनेगा?
सुनकर अपने जैसा जन-मन-
इसमें भाव गुनेगा।

मैं निर्मल निश्छल अन्तर से-
अपनी बात बताता,
मुझ पर रूठा रहा सदा से-
मेरा भाग्य-विधाता।

लेकिन मैंने दुख में भी तो-
सुख के गीत सुनाए,
जो भी सकट आए उनको-
मीत पुनीत बनाए।

किसी तरह का भाव हृदय को-
क्षणभर डिगा न पाया,
तरह-तरह का ज्वार उठा पर-
अपने सिन्धु समाया।

शान्त सिन्धु से अन्तस्तल में-
उर्मि अनेकों आई,
लेकिन सागर के भीतर कुछ-
हलचल जगा न पाई।

लौट गयीं सब टकराकर ज्यों-
लहर चपल लहराती,
हिमगिरि की चोटी पर कोई-
रेख न रहने पाती।

शान्त भाव से अब तक अपना-
जीवन यापन करता,
कविता की गादी में रहकर-
हँसता गाता रहता।

इसको कोई कुछ भी कहले-
किन्तु सत्य यह वाणी,
मेरा अब सर्वस्व भुवन में-
बस कविता कल्याणी।

इसके आगे सोच न सकता-
और नहीं कुछ जाना,
इसे छोड कर अब तक मैंने-
कहाँ किसे पहचाना।

कविता है सुरसरि की धारा-

सदा निमज्जन करता,

अपने मन के रिक्त कोष को-

इसकी निधि से भरता।

★ ★ ★

जय-जय मेरी कविता रानी-

मुझे जगाने वाली,

शक्ति-स्वरूपा लोक-हितैषी-

भुजा सहस्रोंवाली।।

सातवाँ सर्ग

जीवन पथ पर चलने वाला-
अपनी मंजिल गढ़ने वाला,
कभी नहीं भयभीत हुआ है-
विघ्नों ने कब उसे छुआ है?

वह निर्द्वन्द्व सदा बढता है-
उच्च शिखर तक पर चढता है।
उसे न लगता बाधा आई,
पथ पर कहीं शिला टकराई।

वह तो अपनी धुन में चलता-
तम में दीप-शिखा बन जलता।
बाधा पथ की खुद हट जाती-
आँधी-झझाराह दिखाती।

उसके पाँव न डगमग होते-
मेघ स्वय उसके पग धोते।
बज्र कडक कर उसके मन में-
हिम्मत देते हैं जीवन में।

शीश उठाए चलता पथ पर-
स्वय भविश्यत् के दृढ रथ पर।
उसका पथ प्रशस्त रहा है-
दुर्गमता का दूह ढ्हा है।

पीछे मुड कर देख रहा हूँ-
अपना विगत पेरख रहा हूँ।
अगम भयकर पथ मिला था-
सकट का ही खडा किला था।

माता-श्री थीं हुलसी देवी-
परम साधिका प्रभु की सेवी।
मन से साध्वी साधु अनन्या-
भरे गेह में पावन धन्या।

उनके तप से निर्मित मेरा-
जीवन तो है शान्त बसेरा।
आज बना है जाने कैसे-
जीता हूँ अब जैसे तैसे।

किन्तु किसी का दोष नहीं है-
मन में कोई रोष नहीं है।
जीवन का क्रम चलता रहता-
पहुँचा यहाँ कहाँ से बहता।

माता श्री ने बडे प्रेम से-
पूज्य धर्म औ नेम क्षेम से,
फेरा मुझ पर हाथ सलोना-
सिहरा तन का कोना-कोना।

किन्तु विधाता रूठ गए थे-
अपने ही हम टूट गए थे।
सम्भल न पाए धरती छूटी-
साधन की परिचर्या टूटी।

जब तक सम्भलूँ चली गयी थी-
माता-श्री अब नहीं रही थी।

कैसा कठिन समय था भीषण-
अशगुन होता रहता प्रतिक्षण।
कोई कुछ भी बोल न पाता
अपना अन्तर खोल न पाता

एक अजब सन्नाटा छाया-
लगता सब कुछ था भरमाया।
यों तो मुझको याद नहीं है-
फिर भी आशा लगी कहीं है।

अपनी माँ को जान न पाया-
रहा अबोध सदा भरमाया,
लेकिन माँ का प्यार अखण्डित-
मिला हृदय करुणा से मण्डित।

जान रहा हूँ वही प्यार है-
जीवन भर का पुण्य सार है।
उसको ही मैं छन्दों में नित-
करता रहता हूँ अनुबधित।

माँ का प्यार हृदय में जगकर-
जन-जन की पीडा से से लगकर।
मुझ में ज्योति जगाता नूतन-
सजता मेरा जीवन उपवन।

जहाँ कहीं पीडा दिखती है-
करूण कथा कोई लिखती है।
तब-तब माँ की याद सताती-
दृग के आँसू में बह आती।

याद नहीं स्वर जगा रहा हूँ-
नयी कल्पना सजा रहा हूँ।
सजग कल्पना की आँखों में-
मात्र वही है अब लाखों में।

देख रहा हूँ सौम्य मूर्त्ति थी-
जड़ता में वह नयी स्फूर्त्ति थी।
उसके जैसी कहाँ कौन है?
इसका उत्तर सदा मौन है।

मातृ-तत्त्व है सब से ऊपर निर्मल
कलुष-विहीन सदा शुभ उज्जवल।
जब भी इसकी याद उतरती-
करूणा अन्तर-तर में भरती।

सद्विचार सद्भाव उमडता-
दृग में स्नेहिल मेह घुमडता।
इसीलिए कहते सब सत्त्वर-
सदा 'मातृ देवो भव' भू पर।

माँ से बढ़कर और न कोई-
कह कर प्रतिपल आँखें रोई।
किन्तु वही माता श्री मेरी-
बिछुड़ी भू पर घिरी अन्धेरी।

जाने किसने तभी पुकारा-
दादी माँ का मिला सहारा।
हुक्का देवी दादी माँ थी-
गहन तिमिर में ज्योति प्रभा थी।

गोद उठा कर पाला पोसा-
मिला भाग्य से नया भरोसा।
माता का कर्त्तव्य निभाया-
मैंने नूतन जीवन पाया।

पहला यही पड़ाव मिला था-
मन में नूतन कमल खिला था।
यह क्षण निर्मल स्नेह सना था-
सब कुछ अपने आप बना था।

★ ★ ★

सात्त्विक मन के भाव निरामय-
देते सब को निर्भय आश्रय।

प्रभु का भू पर ध्यान बडा है-
सम्मुख सब के वही खडा है।

आठवां सर्ग

विधि-विधान है भू पर निर्मम-
चलता इसका क्रूर पराक्रम।
        लेकिन ऐसा हम कहते हैं-
        जो भी घन सकठ सहते हैं।

उसकी इच्छा कौन बताए?
यह रहस्य कौन दिखाए?
जिनकी आँखें खुली हुई हैं-
ज्ञान-विभा से धुली हुई है।

वे ही किंचित कह सकते हैं-
इस रहस्य को गह सकते हैं।
यो तो यह अनबूझ पहेली-
मार सभी ने इसकी झेली।

मैं भी थका-थका लगता हूँ-
क्षण भर को भी जब जगता हूँ।
दादी माँ के साथ रहा मैं
और पिता का प्यार गहा मैं।

भूल गया था पिछला जीवन-
लगता था अब सब कुछ नूतन।
नए-नए फूलों में हँसता-
चाँद-सितारों में मन बसता।

जो भी कहता सब मिल जाता-
मन में निर्भय प्यार समाता।
दादी-माँ के साथ सभी जन-
अपने साथी परिजन-पुरजन।

और पिता श्री साथ विहँसते-
मुझको अपना फूल समझते।
मुझ पर सब कुछ वार रहे थे-
हरदम करते प्यार रहे थे।

लगता सबको समय सुहाना-
चिडिया चुगती थी नित दाना।
चहल-पहल से गेह भरा था-
सब के मन में नेह भरा था।

किन्तु विधाता को यह भीक्षण-
जाने क्यों लगता था उन्मन।
लगभग चार बरस थे बीते-
कण भर ही जीवन-रस रीते।

अकस्मात् फिर बज्र गिरा था-
भाग्य-लेख अब पुन फिरा था।
घर के उत्सव बन्द हुए थे-
मोद सुगायन मन्द हुए थे।

सोभगमल जी पिता हमारे-
हुए राम के अपने प्यारे।
घर-बाहर सब सूना-सूना-
हुआ सभी दुख भी दूना।

मेरा तो सर्वस्व लुटा था–
जीवन का अवलम्ब छुटा था।
नहीं सहारा शेष बचा था–
विधि ने कैसा खेल रचा था।

ऐसे में दादा जी मेरे–
साथ बने थे साँझ–सबेरे।
हरक्षण साथ मुझे रखते थे–
मुझे सम्भाले ही रहते थे।

मैं भी उनसे हिला–मिला था–
उनके मन का सुमन खिला था।
वे थे मेरे घर के नायक–
जग जीवन के प्रबल सहायक।

★ ★ ★

मेरा जीवन तो था वैसा–
वन्य कुसुम का होता जैसा।
उसे पता क्या, गध न जानी–
भौंरों की धुन कब पहचानी।

कोई इनका हार बनाता–
देव शीश पर इन्हें चढाता।
वन में खिलकर वह मुरझाता–
इससे ज्यादा जान न पाता।

वन्य कुसुम का ज्ञान यही है-
उसकी बस पहचान यही है।
मैं भी था अनभिज्ञ अभी तक-
हुआ नहीं था विज्ञ अभी तक।

नहीं जानता विश्व बला है-
जीना-मरना एक कला है।
माता-श्री का निधन न जाना-
मैं अबोध बालक अनजाना।

किन्तु पिता जब स्वर्ग सिधारे-
तब कुछ मैंने होश समभारे।
वह घटना कुछ याद अभी भी-
उसका घना विषाद अभी भी।

बालपने के छोटे वय में-
क्रन्दन है जीवन के क्षय में।
तभी हुआ कुछ ज्ञान अचानक-
धरती पर है मरण भयानक।

इसके पहले कभी न जाना-
नहीं सत्य को था पहचाना।
वही जानता था इस जग में-
जीवन धारण के इस मग में।

मरण एक है निश्चित गाथा–
इससे कोई पार न पाता।
जन्म धरा पर जो लेता है–
प्राण यहीं वह दे देता है।

जो भी दृश्य–जगता दिखता है–
लेख मरण का ही लिखता है।
इससे कोई बचा नहीं है–
विधि ने ऐसा रचा नहीं है।

सृष्टि समूची मरणशील है–
नहीं कहीं कुछ ग्रहणशील है।
जन्म हुआ जिसका भी जग में–
जो भी आया इस जग–मग में

एक दिवस वह जाएगा ही–
सत्य यही अपनाएगा ही।
अब तक नहीं जानता था मैं–
अब तक नहीं मानता था मैं।

मैं बालक अबोध था भू पर–
वज्र अचानक गिरे टूट कर।
धीरे–धीरे सँभल गया मैं–
अपने से ही वहल गया मैं।

★ ★ ★

प्रभु की कृपा जिसे मिल जाती-
उसकी नैया डूबन न पाती।
कृपा-डोर से हे करूणाकर-
बँधा हुआ है मेरा अन्तर।।

नवम् सर्ग

जीवन की केवल सार्थकता-
धर्म भाव में रहती,
जहाँ धर्म है वहीं सत्य की-
ज्योति अहर्निश जगती।

धर्म–परायण नर को भूतल–
दिव्य दिखाई पडता,
उसके मन में कभी न जगने
पाती कोई जडता।

चेतन मन से पुण्य विभा को–
वह आलिगन करता,
विपदाओं के कुहर में भी–
कभी नहीं वह डरता।

पुण्य–पथिक–सा अपने पथ पर–
चलता ही नित रहता,
लक्ष्य स्वय निश्चित कर अपने–
पथ पर बढ्ता चलता।

चाहे जो हो किन्तु कभी भी–
उसके पाँव न रूकते,
आदर्शों के ऊँचे मस्तक–
नहीं कहीं पर झुकते।

★ ★ ★

जीवन की कितनी घटनाएँ–
दादा जी ने देखी,
क्रूर नियति की रेखाएँ भी–
अपने मन से लेखी।

अन्धकार-सा छाया दृग में-
किन्तु नहीं भरमाए,
अपने पुण्य-कर्म के पथ पर-
बढ़ते ही नित आए।

उनका एक नियम था प्रतिदिन-
प्रभु की सेवा करते,
निर्धन जन की झोली में खुद-
गेहूँ-चावल भरते।

सात-आठ बोरी अनाज की-
रोज सबेरे बँटती,
दुखियों की सेवा में उनकी-
घड़ियाँ सब दिन कटती।

सत्तर गाएँ थी उस घर में-
नदी दूध की बहती,
छाछ-दही औ दूध मलाई-
सब को मिलती रहती।

जो भी उनके पास पहुँचते-
लेकर ही कुछ आते,
औरों की सेवा में सब दिन-
अपना समय लगाते।

महज एक सतान उन्हें थी-
वह भी धर्म-पारायण,
सत्य-रूप निष्कलुष सदा ही-
धर्म-भाव-सचारण।

किसी तरह की कमी नहीं थी-
लक्ष्मी रही बिहँसती,
अपनेपन के शुभ भावों से-
करूणा रही सरसती।

दया-दान की ज्योति जगाए-
अपने पथ पर चलते,
उनके जीवन में सुषमा के-
दीप सदा थे जलते।

मन में था सौन्दर्यभाव का-
एक अनोखा सरगम,
जिस पर गुजित होती रहती-
गीतों की धुन हरदम।

★ ★ ★

महानगर कलकत्ता में ही-
भवन अनेक बनाए,
अपने सुन्दर भावों से ही-
उनको खूब सजाए।

बडे-बडे भवनों के स्वामी-
महानगर में बनकर,
यश-गौरव औं कीर्त्ति कमाई-
सच्चे पथ पर चलकर।

इनके मन में मानवता का-
सेवा-भाव भरा था,
दीन-दुखी पर दया दिखाता-
सब से साध्य बडा था।

★ ★ ★

रेगिस्तानी बीकानेर में-
बनी हवेली अद्भुत,
नक्काशी की बारीकी ही-
इसमें दिखती सयुत।

रक्तवर्ण दुलमेरा पत्थर-
सबको मोहित करता,
ऐसा इन्हें तराशा जिससे-
मोम सरीखा लगता।

दर्शक देख ठगे रह जाते-
ऐसी है नक्काशी,
सपने भव्य उतार दिए हैं-
शुभ्र सदन-अधिवासी।

झाड और फानूस टँगे हैं-
इसमें तरह-तरह के,
इसके कमरों में जो आते-
चलते ठहर-ठहर के।

मूर्त्ति इताली मार्बल की है-
कितनी भव्य सुहानी,
लगता अब यह स्वय कहेगी-
अपनी दिव्य कहानी।

★ ★ ★

था ऐश्वर्य भरा, अन्तर से-
हम आनन्द मनाते,
प्रभु का प्यार-अनुग्रह पाकर-
जीवन सरस बनाते।।

दशम् सर्ग

मेरी अपनी राम-कहानी-
मुझको लगती बडी सुहानी।
सम्भव है दुनिया को इसके-
भीतर रस न मिलेगा घुसके।

यह है अपनेपन की गाथा-
अब तक रहा जहाँ भरमाता।
घर में धन-ऐश्वर्य भरा था-
बाग-बगीचा हरा-भरा था।

जिसको दुनिया सम्पति कहती-
जिसकी खातिर व्याकुल रहती।
क्षणभर शान्ति नहीं पाती है-
सपनों में ही विलसाती है।

इसकी खातिर ही धरती पर-
मानव दिखता हर क्षण तत्पर।
यहाँ-वहाँ का आना-जाना-
दुख में सुख में रोना गाना।

इसका ही है मात्र तमाशा-
रहती सबको इसकी आशा।
पडित-मूढ सभी हैं पागल-
सबको चाह इसी की केवल।

जहाँ देखिए यही प्रबल है-
यही धरा पर दृढ सम्बल है।
घर से बाहर आकर देखो-
जन-जन का मन तनिक परेखो।

सब बेचैन-चक्र से चालित-
अपने मन में रहते सीमित।
सब हैं मन से यही मानते-
सब कुछ धन है यही जानते।

जैसे हो धन सग्रह करना-
अह भाव से मन को भरना।
यही मात्र है सब की इच्छा-
दुनिया में है यही परीक्षा।

जो भी गाडी छकडे चलते-
भाव सभी में यही मचलते।
कोई इससे अलग नहीं है-
यही लालसा सभी कहीं है।

बडे-बडे सब ऋषि-मुनियों में-
पडित ज्ञानी सब गुनियों में-
इसकी रहती चाह निरतर-
चलता यही सदा सवत्सर।

लेकिन मुझ पर कृपा-अनुग्रह-
प्रभु की ऐसी, रहा न आग्रह।
सब कुछ ही उपलब्ध मिला था-
अपना ही जलजात खिला था।

भरे-पुरे घर में मैं आया-
प्रभु प्रसाद में मन बहलाया।
भूल चला जो बिछुड गए थे-
लगते सब कुछ नए-नए थे।

बचपन में कैशोर्य जगा था-
मन में नूतन स्नेह पगा था।
नयी रोशनी मचल रही थी-
सपनों में मधु-धार बही थी।

शिक्षण में दिन लगे बीतने-
क्षण किशोर के लगे रीतने।
चुपके नयी जवानी आयी-
दृग में नव हरियाली छायी।

अब तो सब कुछ नया नया था
क्या बतलाऊँ वह सब क्या था?
अमराई में कोकिल का स्वर-
लगा गूँजने अब निशि-वासर।

पी-पी की धुन मन हुलसाती,
मन में मादक गीत जगाती।
मधुरिम स्वर पर हृदय मचलता-
मन में स्नेहिल दीपक जलता।

बडा सुहाना जीवन का क्षण-
रस से सिंचित रहता प्रतिक्षण।
नयी चाँदनी बिखर रही थी-
रस की धारा उमड रही थी।

ऊषा स्वय विहँसती आती-
भाव हृदय में नया जगाती।
मन में कुछ गुदगुदी सुलगती-
सृष्टि सलोनी मन से लगती।

किरण प्यार की उतरी भू पर-
हुआ प्रेम से पुलकित अन्तर।
गीतों की धुन सरस सुहानी-
गूँजी मन में कविता रानी।

उसी समय से राग जगा है-
कविता से अनुराग लगा है।
अब तो इसने गेह बनाया-
मुझ में स्नेहिल दीप जलाया।

इसकी मादक लौ के आगे-
मैंने कितने जन हैं त्यागे।
एकमात्र है यही हृदय में-
मेरे मन के शून्य निलय में।

सहज नहीं है इसे छोडना-
अन्तर का सबध तोडना।
अपनी हरदम चाह यही है-
लगता अन्तिम राह यही है।

एक यही है जीवन-आशा-
अपनेपन की सब परिभाषा।
मेरी यह पहचान बनाए-
मुझको मेरा लक्ष्य बनाए।

★ ★ ★

कविता देवी का अभिनन्दन-
करता रहता प्रतिपल वन्दन
यही आज है जीवन सारा-
मर्त्य भुवन में एक सहारा।।

ग्यारहवां सर्ग

फूल खिले हैं डाल-डाल पर-
पक्षी चह-चह करते हैं,
थिरक-थिरक कर पत्ते-पत्ते-
जीवन में रस भरते हैं।

खिलता नया बसन्त धरा पर–
मन में नयी जवानी है,
इस बेला में कण–कण तक की–
मादक सरस कहानी है।

धरती पर जब रस बरसाता–
नव बसन्त आ जाता है,
जीवन में उन्मादक यौवन–
अपनी छटा दिखाता है।

बचपन और किशोर यहाँ पर–
दोनों ही चल जाते हैं
उस अबोध क्षणों को कोई–
ज्यादा रोक न पाते हैं।

पता न चलता कब आया औ–
पलभर में ही दूर हुआ,
यौवन में फिर उस अबोध का–
सपना चकनाचूर हुआ।

यौवन के क्षण के आते ही–
रंग नया भर जाता है,
नये–नये बिम्बों में जगकर–
मन मानस लहराता है।

यही समय हैं जब आँखों में-
नयी रवानी आती है,
शुष्क विटप की डाल-डाल पर
नयी जवानी आती है।

पत्ती-पत्ती रंग-बिरंगी-
नयी दिखाई पडती है,
कली-कली के दल पर कोई-
नूतन आभा चढ्ती है।

दृष्टि जहाँ तक जाती, लगता-
मादकता ही शेष यहाँ,
रस-विभोर है जग का कण-कण-
रसमय है अवशेष यहाँ।

रस के बेबस सर्बस जग का-
कुछ भी इससे दूर नहीं,
इसके चढ्ते ज्वारों में भी-
जीवन है मजबूर नहीं।

यौवन का क्षण एक पहेली-
कोई समझ न पाता है,
यौवन के हिडोले पर ही-
अपना समय बिताता है।

तरह-तरह के सपने मन में-
अनायास आ जाते हैं,
नहीं चाहने पर भी अपने-
हँस-हँस गले लगाते हैं।

कोई इनसे बचा न अब तक-
जन-जन सब बेहाल हुए,
यौवन के मादक सपने ही-
जीवन के जजाल हुए।

पता न चलता कब चुपके से-
नयी जवानी आती है,
सरस खुमारी बन आँखों की-
लाली सी छा जाती है।

बचपन की कुछ याद नहीं है-
औ किशोर भी ज्ञात नहीं,
लेकिन धूम मचाने वाला-
यौवन तो अज्ञात नहीं।

इसकी मादक लोल लहरियाँ-
तन-मन को सरसाती थीं,
मन के सूने आँगन में भी-
नई रागिनी गाती थीं।

रोम-रोम में सिहरन जगती-
तन पुलकित हो जाता था,
हर क्षण नयन-नयन के आगे-
सपना नया सजाता था।

ऐसे में जो उतरी मन में-
वह गुलाब की रानी थी,
सच मानो मेरे जीवन की-
यही डोर कल्याणी थी।

परिणय-बद्ध हुए हम दोनों-
सुख का नया प्रभात हुआ,
नव पराग-मकरद सुवासित-
जीवन का जलजात हुआ।

स्नेहमयी वह हृदय सुकोमल-
मन से मुग्ध समर्पित थी,
मेरी हर इच्छा के सम्मुख-
प्रेम-भाव से अर्पित थी।

दयामयी वह तुहिन-विन्दु सी-
कोमल निर्मल वाणी थी,
सच कहता वह सपनों की ही-
मूर्त्तित दिव्य कहानी थी।

उसको पाकर लगा कि मेरा-
सपना ही साकार हुआ,
काँटों के घर में भी मेरा-
फूलों का ससार हुआ।

मेरी हर कविता में उसकी-
कोमलता लहराती थी,
हर कविता की पक्ति-पक्ति को-
गा-गा कर दुहराती थी।

उसकी वाणी से कविता को-
जीवन का वरदान मिला,
आज उसी को अर्पित है जो-
गौरव-यश-सम्मान मिला।

★ ★ ★

पास नहीं वह स्नेहमयी पर-
कविता बनकर आती है,
उस 'गुलाब' की छटा नयन में-
अपना रूप दिखाती है।

बारहवां सर्ग

नाम सदृश 'गुलाब' सुगंधित-
आभा थी फैलाती,
घर-आँगन तक उसकी शोभा-
अपनी छटा दिखाती।

अपने सयम और व्रतों में-
लीन सदा थी रहती,
शीशे-जैसी पारदर्शिता-
उसमें सदा झलकती।

'वर्षीतप' और 'नवाण' यात्रा-
की थी पूर्ण हृदय से,
आदिनाथ की पूजा की थी-
अपने व्रत अक्षय से।

पालितणा में स्वय सुधाजी-
औ' हम साथ रहे थे,
तीनों ने मिल 'नवाणु' यात्रा-
के सब भार सहे थे।

पहले मैं था बिखरा-बिखरा-
अब सयम अपनाया,
उसके कारण ही घर मेरा-
स्वर्ग-सदन बन आया।

उसने खूब सजाया घर को-
मन को खूब सँवारा,
कदम-कदम पर दिया उसी ने-
मुझ को पुण्य सहारा।

अब तो घर में चहल-पहल औ'-
रौनक पडी दिखाई,
सब कहते थे घर में अब है-
स्वय लक्ष्मी आई।

कोना-कोना चमक उठा था-
घर-आँगन था हँसता,
कण-कण तक पर थिरक रही थी-
मादक मुग्ध सरसता।

पुरजन-परिजन सब थे हर्षित-
सब लगते थे अपने,
सत्य हुए दिखते थे मानो-
सब के मन के सपने।

मूर्त्तिमयी करूणा की देवी-
सब को मान्य समझती,
सब को अपना जान हृदय की-
बात सभी से करती।

नहीं किसी से द्वेष-भाव था-
न ईर्ष्या थी मन में,
परम साधुता-भाव भरा था-
उसके उस जीवन में।

गेह चमकता नन्दन जैसा-
फूल खिले थे अनुपम,
होता रहता था अब घर में-
मधुमय उत्सव हरदम।

नौकर-चाकर सब जन उसको-
अपनी बात सुनाते,
उसके हाथों ही मन वांछित-
प्राप्य सभी जन पाते।

जिसने जो की जभी याचना-
तत्क्षण पूरा करती,
सर्बस देने में भी वह थी-
नहीं किसी से डरती।

पुण्यमयी वह पुण्य विभा थी-
राह दिखाने वाली,
मेरे जीवन के सूने में-
ज्योति जगाने वाली।

उसके कारण मेरी कविता-
का भी ज्वार जगा था,
शुष्क हृदय में भी अनजाने-
अद्‌भुत ज्वार जगा था।

हम दोनों के गहन पेम के-
चार पुष्प खिल आए-
सब से पहले, ज्येष्ठ सभी से
पुत्र-रत्न हम पाए।

कन्याओं में बडी प्रभा थी-
उससे छोटी प्रतिभा,
इसके बाद तीसरी प्रमिला-
छोटी थी पर शान्त विभा।

पुत्र-रत्न था प्रदीप ही-
मेरी जीवन आशा,
वही मिटा सकता था मेरे-
पथ का घना कुहासा।

★ ★ ★

चार फूल जब खिले हमारी-
बगिया थी लहराती,
जीवन की हर घडी थिरककर-
नूतन मोद मनाती।

लगता हर क्षण सुख में डूबा-
मन मस्ती में पागा,
जडता-निद्रा कहीं नहीं थी-
चेतन मन था जागा।

बच्चों की किलकारी से घर-
गूँज रहा था हरदम,
बरस रहे थे कण-कण तक पर-
अक्षत रोली-कुकुम।

हँसी-खुशी के बाजे बजते-
होते प्रतिपल उत्सव,
हास और परिहास सजाने-
के होते थे उद्‌भव।

किसी तरह की कमी नहीं थी-
सब थे मोद मनाते,
नया-नया आनन्द सजाते-
लोग-बाग थे आते।

ऊषा लगती गीत सुनाती-
दोपहरी मुस्काती,
संध्या ईमन राग सितारों-
के तारों पर गाती।

रजनी आकर मोती नभ में-
हँस-हँस कर बिखराती,
धीरे-धीरे हवा मचल कर-
अपना राग सुनाती।

सभी तरफ आनन्द भरा था-
    दिशा-दिशा थी हँसती,
जडता में भी चेतनता की-
    धडकन रही उभरती।

समय बीतता जाता था-
    आनन्द मधुर लहराता,
जीवन के हर पल में मानो-
    फूल नया मुस्काता।

★ ★ ★

कविता की भी नयी डगर थी-
    खूब उमडकर आई,
जीवन के कोने-कोने में-
    उसने धूम मचाई।

जीवन का हर पहलू उसने-
    देखा खूब सुसज्जित,
मधु के रस में सधी लेखनी-
    अविरल रही निमज्जित।

कविते! तुझे प्रणाम कि तुमने-
    देखे हैं दिन अच्छे,
अब तो लगता टूट गए सब-
    सपनों के शुभ लच्छे।।

तेरहवां सर्ग

उतरी भू पर रश्मि उषा की-
दिग-दिगन्त मुस्काया,
आलिगन करने को भू का-
कण-कण तक अकुलाया।

बडी सलोनी नयी प्रभा थी–
रूप अनोखा जागा,
अरूण–शिखा भूतल पर बोली–
नभ में बोला कागा।

डाल–डाल पर चहक रहे थे–
पक्षी जोर लगा के,
शुक–कपोत औ मैना घर में–
बोल रहे कुछ गा के।

सारस–हस–चकोर जगे थे–
धरती जाग रही थी,
हलचल थी सब ओर धरित्री
निद्रा त्याग रही थी।

घर–घर में खुशियाँ छाई थी–
सभी ओर थी मस्ती,
मादकता में सराबोर थी–
जीवन की यह हस्ती।

★ ★ ★

पुत्र प्रदीप प्राप्त कर यौवन–
जीवन में मस्काया,
मेरी खुशियों का भी आलम–
हँसी–खुशी बन छाया।

गौर-वर्ण का सुघड सलोना-
चमचम रूप सजाए,
चलता था तब लगता जैसे-
कामदेव हैं आए।

समय देख परिणय-बन्धन का-
आया था शुभ उत्सव,
पुत्र-वधु बन विमल सुधाजी-
आई घर में अभिनव।

बडी सलोनी रूपवती वह-
गुण से भरा खजाना,
अपना ही सौभाग्य सभी ने-
उसको पाकर माना।

नन्हीं गुडिया-सी वह देवी-
सब को आदर देती,
सास-ससुर के पग पर झुककर
मगल आशिष लेती।

भाव-प्रवण वह धर्म-परायण-
प्रभु का पूजन करती,
हर क्षण अपने सात्विक मन से
पति को वन्दन करती।

राधा और कन्हैया जैसी–
जोडी लगती सुन्दर,
सीता–राम बने थे दोनों–
घर के बाहर–भीतर।

भारत की सुसस्कृत नारी के–
हो गुण से अभिभूषित,
बना हुआ था गेह हमारा–
स्वर्ग सदन सा पूजित।

सभी तरह का नूतन कलरव–
मोद बिखरता रहता,
सुबह–शाम आँगन में मेरे–
स्नेह उमडता रहता।

नए–नए रूपों में सजकर–
मोद–प्रमोद बिहँसते,
अपने और पराए आकर–
मिलते हँसते–हँसते।

सभी तरफ आनन्द घना था–
रस की वर्षा होती,
लगता मानों उषा किरण से–
धरती को है धोती।

मन मानस में कविता जगती-
गीत उमड लहराता,
कहीं किनारे बैठ अकेले-
गीतों को दुहराता।

शब्द-शब्द में रस भर आता-
कडी-कडी मुस्काती,
कविता हो जीवन्त स्वय ही-
पास थिरकती आती।

कैसा था वह समय कि उसकी-
बातें कौन बताए,
अलकासी उस क्षणिक खुशी की-
गाथा कौन सुनाए।।

चौदहवां सर्ग

चक्र समय का चलता निशि-दिन-
जन-जन पर है जीवन का ऋण।
इसी भार को सब उतारते-
कभी जीतते, कभी हारते।

कब क्या होगा–कौन जानता ?
सत्य विकट है–कौन मानता ?
लेकिन घूर्णित चक्र वक्र में–
फँसी हुई है सृष्टि नक्र में।

आज जहाँ पर हँसी–खुशी है–
हास–रास की समा बसी है।
वहाँ न जाने कल क्या होगा–
आगे अगले पल क्या होगा ?

कौन जानता भावी–रेखा–
किसने यह सब आँखों देखा।
सुनी सुनायी घटनाओं पर–
ऐसी ही कितनी नावों पर–

हम चलने के है अभ्यासी–
यही हमारी काबा–काशी।
हर मजहब की बात यही है–
यही व्योम है, यही मही है।

सुख–दुख हरदम आते–जाते–
सब दिन कोई ठहर न पाते।
यही सृष्टि का निगम अखण्डित–
इससे ही है भूतल मण्डित।

सुख की लहरों पर लहराए-
मन से मन के गीत सुनाए।
मन को नव आनन्द मिला था-
फूलों को मकरद मिला था।

कहीं नहीं थी तनिक उदासी-
मन की मीन नहीं थी प्यासी।
सुख-सौरभ-सन्तोष भरा था-
जन-जन में नव जोश भरा था।

कण-कण भू का था मनभावन-
दृष्टि सुभग थी, सब था पावन।
सुख की वर्षा बरस रही थी-
पूरी धरती सरस रही थी।

ऐसे में ही अनायास ही-
हुआ भाग्य का दुखद ह्रास ही
जान न पाए, समझ न पाए
क्षण में रत्न अमोल गवाए।

★ ★ ★

दन्त रोग से पीडित सत्वर-
पुत्र प्रदीप व्यथित-सा होकर,
पास चिकित्सक के क्या आया?
लगा मौत ने स्वय बुलाया।

कर सकते थे हम सब जितना-
किया सभी कुछ जी भर उतना।
लेकिन उसको बचा न पाए-
हमने तो सर्वस्व गवाए।

अकस्मात् परिवर्त्तन आया-
अपना सब सौभाग्य लुटाया,
आँखों में अब अन्धकार था-
जीवन भी अब बना भार था

सभी ओर था क्रन्दन-रोदन-
सिसक रहा था घर का कण-कण।
चैन किसी को तनिक नहीं थीं-
सब की आँखें बिलख रही थीं।

घर बाहर सब एक बना था-
दुर्दिन का ही टेक तना था।
घर का आँगन औ गलियारी-
सब में सुलगी थी चिनगारी।

सभी ओर था दाह अनोखा-
लगता जीवन केवल धोखा,
आस-पास के बाग बगीचे-
लगते आँसू से हैं सींचे।

नयी-नयी दुल्हन के सिर पर-
टूटा कैसा बज्र कडक कर।
कौन बताए? उसका रीता-
जीवन पर अब कैसा बीता।

अभी खेलने का था अवसर-
गुड्डा-गुड्डी को ही लेकर।
विधि ने पर दुख-दान दिया था
कैसा बज्र-प्रहार किया था।

सम्भल न पाई टूट गयी थी-
अपने पल से छूट गयी थी,
फिर भी मन में आश लगाए
ईश्वर में विश्वास जगाए।

इसने घूट जहर की पीकर-
मुझे जिलाये रक्खा भू पर।
इसके कारण ही मैं अव तक-
काट रहा हूँ समय भयानक।

लेकिन उसकी माताजी का-
हाल न पूछो दुखियारी का।
रोते-रोते घडी बितायी-
फिर भी काया सम्भल न पायी

कर सकते थे हम सब जितना-
किया सभी कुछ जी भर उतना।
लेकिन उसको बचा न पाए-
हमने तो सर्वस्व गवाए।

अकस्मात् परिवर्त्तन आया-
अपना सब सौभाग्य लुटाया,
आँखों में अब अन्धकार था-
जीवन भी अब बना भार था

सभी ओर था क्रन्दन-रोदन-
सिसक रहा था घर का कण-कण।
चैन किसी को तनिक नहीं थीं-
सब की आँखें बिलख रही थीं।

घर बाहर सब एक बना था-
दुर्दिन का ही टेक तना था।
घर का आँगन औ गलियारी-
सब में सुलगी थी चिनगारी।

सभी ओर था दाह अनोखा-
लगता जीवन केवल धोखा,
आस-पास के बाग बगीचे-
लगते आँसू से हैं सींचे।

नयी-नयी दुल्हन के सिर पर-
टूटा कैसा बज्र कडक कर।
कौन बताए? उसका रीता-
जीवन पर अब कैसा बीता।

अभी खेलने का था अवसर-
गुड्डा-गुड्डी को ही लेकर।
विधि ने पर दुख-दान दिया था-
कैसा बज्र-प्रहार किया था।

सम्भल न पाई टूट गयी थी-
अपने पन से छूट गयी थी,
फिर भी मन में आश लगाए
ईश्वर में विश्वास जगाए।

इसने घूट जहर की पीकर-
मुझे जिलाये रक्खा भू पर।
इसके कारण ही मैं अब तक-
काट रहा हूँ समय भयानक।

लेकिन उसकी माताजी का-
हाल न पूछो दुखियारी का।
रोते-रोते घडी बितायी-
फिर भी काया सम्भल न पायी

एक दिवस वो भी सब होते-

छोड गयीं हम सब को रोते।

उनको भी हम बचा न पाए-

किसी तरह मन को समझाए।

★ ★ ★

गीतों का सम्बल था जिस पर-

पाँव बढाता रहा निरन्तर।

और न ही तो टूट चुका था-

दीये का सब स्नेह चुका था।।

पन्द्रहवां सर्ग

विटप टूट कर जब गिरता है-
पास न कोई रहता,
खेर-पात सब उडने लगते-
कुछ भी नहीं सँभलता।

सदा साथ रहने वाली भी–
अब तो साथ नहीं थी,
दुनिया मेरी बिखर गयी थी–
तिलभर शान्ति नहीं थी।

ऐसे में जीना भी कितना–
मुश्किल है एकाकी,
आँखों में रहती थी छाई–
केवल रात अमा की।

दूर–दूर तक एक किरण भी–
नहीं दिखाई पडती,
अपनेपन की बात कहीं भी–
नहीं सुनाई पडती।

अपना घर अजनबी बना सा–
दिखता था मैं बेबस,
समझ न पाता कट पाएगा–
क्यों कर ऐसा ऊमस।

पुत्र–रत्न जो कठिन घड़ी में–
बनता एक सहारा,
डूब गया था पहले ही वह–
मेरा भाग्य–सितारा।

बडी उम्मीदें कभी बधी थीं-
उसे देखकर मन में,
काम यही आएगा निश्चय-
मेरे अन्तिम क्षण में।

लेकिन मैं मझधार पडा हूँ-
आँसू झर-झर झरते,
सूने अम्बर से भी मुझ पर
तड-तड ओले पडते।

जिधर बढाता पाँव उधर ही-
केवल काँटे मिलते,
दिखता ऐसा क्षेत्र न जिस पर
फूल हृदय के खिलते।

रोज सबेरे ऊषा की जब-
लाली भू पर आती,
लगता शोणित के रगों में-
निष्ठुरता अकुलाती।

दोपहरी भी अग्नि-बाणले-
मुझको सदा डराती,
लगता अम्बर से चिनगारी-
मुझे जलाने आती।

सध्या के झुरमुट में देखा-
रात उतर कर आई,
लगा कि जैसे गहन अँधेरी-
मुझ में स्वय समाई।

एक अजब सन्नाटा जैसा-
अनुभव में था आता,
उससे बाहर आने का मैं-
मार्ग नहीं था पाता।

जैसे-तैसे दिन कटते थे-
रातें रोते-रोते,
बीत रहा सारा जीवन-
सब कुछ खोते-खोते।

★ ★ ★

ऐसे में भी कविता देवी-
बनी हृदय का सम्बल,
रो-रोकर मैं रहा भिगोता-
उसका स्नेहिल आँचल।

व्यथा-कथा की वाणी से जी-
किसी तरह बहलाया,
घूँट जहर का पीकर मैंने-
गीत हृदय से गाया।

सोलहवां सर्ग

सुख-दुख भू पर आते जाते-
धूप-छाँव का खेल दिखाते।
कभी अँधेरा कभी उजाला-
बारी-बारी आनेवाला।

इसको कोई टाल न सकता–
मानव यों ही सदा भटकता।
रथ का जैसे पहिया चलता–
मानव रहता सदा मचलता।

लेकिन अपना हाल अजब है–
कथा हृदय की बडी गजब है।
याद नहीं कब सुख था आया
कुछ दिन भी वह ठहर न पाया।

दुख ही है जो झेल रहा हूँ–
इससे अविरल खेल रहा हूँ,
लगता इसका अन्त नहीं है–
मेरा सुखद बसन्त नहीं है।

पुत्र गया तब घिरी अँधेरी–
उजड गयी थी दुनिया मेरी।
लेकिन पत्नी साथ सदा थी–
सुख की इतनी बात सदा थी।

पुत्र–वधू औ पत्नी मिलकर–
झेल रहे थे आँधी–अन्धड़।
घटा विपद की धिरती रहती–
शक्ति हमारी सब कुछ सहती।

यह भी विधि से गया न देखा-
अजब भाग्य का था यह लेखा।
अभी और सहना था बाकी-
आने लगी अमाँ की झाँकी।

रह-रह कर कुछ हो जाता था-
शकुन अपावन ही आता था।
मन में रहती सदा उदासी-
जल में जैसे मछली प्यासी।

पुन घटा अम्बर में छाई-
पत्नी रोग-ग्रस्त हो आई।
वह 'गुलाब' कोमल दलवाली-
घर को सदा सजाने वाली।

रोग-शय्या पर पडी हुई थी-
दुख अथाह में गडी हुई थी।
तरह-तरह के रोग लगे थे-
अन्त काल के योग जगे थे।

किया बहुत उपचार हृदय से-
सम्भव था जो मनुज निलय से।
लेकिन उसको बचा न पाए-
शीश पटक कर रोए-गाए।

पुन वज्र था टूटा हम पर-
तडप उठे हम कातर होकर।
लेकिन दुख की राम कहानी-
चलती रहत है अनजानी।

इसका कोई छोर न धरता-
जख्म हृदय का कभी न भरता।
कोई लाखों यत्न करेगा-
फिर भी इसका अन्त न लेगा।

मानव कितना निर्बल भू पर-
चलती उसकी बात न तिल भर।
नियति डोर पर झूल रहा है-
तिनके जैसा सदा बहा है।

जो भी आता सब कुछ सहता-
घूँट जहर का पीता रहता।
होठों पर पाबन्द लगा है-
हृदय-सिन्धु में ज्वार जगा है।

नियति दृश्य जो दिखलाती है-
घटा विपद की जो छाती है।
सब कुछ उसको सहना पडता-
हृदय मार कर रहना पडता।

यह आघात प्रबल था कितना-
बज्र हृदय पर होता जितना।
तन मन सारा सिहर गया था-
अन्तर टूटा बिखर गया था।

ऐसे में भी कविता मेरी-
मिटा रही थी घनी अँधेरी।
दुख के क्षण को गढ़-गढ़कर हम-
छन्दों में ही गए हरदम।

यही हमारी एक सहेली-
दुनिया खातिर रही पहेली।
दुख के सारे भाव पिरोये-
कविता में ही प्रतिपल रोये।

सब कुछ छूटा, लेकिन कविता-
कभी न छूटे दिन से सविता।
यही हमारा बल-सम्बल है-
प्रभु का आशीर्वाद प्रबल है।।

सतरहवाँ सर्ग

समय बीतता है अविराम-
नहीं जानता कभी विराम।
चक्र घूमता आठों याम-
जन-जन लेते प्रभु का नाम।

नियति-डोर का बन्धन घोर-
लगता कितना कुटिल कठोर।
लेकिन इसका नियम अखण्ड-
कर्म-योग है बडा प्रचण्ड।

भव में इसका भीषण ताप-
सहता अग-जग सब चुपचाप।
कौन भला कब इससे दूर-
सब जन जग में हैं मजबूर।

कभी न फलती अपनी चाह-
कभी न मिलती मन की राह।
नियति चलाती है सब चाल-
भू पर रहते सब बेहाल।

जन्म मनुज का है बस दण्ड-
बन न सके वह कभी उदण्ड।
ज्ञानी भोग रहा है ज्ञान-
मूर्ख भोगता है अभिमान।

परवश हैं सब जग के लोग-
लगा हुआ है सब में रोग।
कोई इसे न सकता छोड-
कोई सका न बन्धन तोड।

अपना क्या है विभव विलास?
सुख-दुख औं यह रोदन-हास?
सब कुछ केवल उसके हाथ-
एक वही है सबके साथ।

जिसने पाया उसका ज्ञान-
मिली उसे ही सब पहचान।
और नहीं तो सब कुछ व्यर्थ-
कहीं नहीं है इसका अर्थ।

होता जब-जब अन्तर खिन्न-
टूट स्वय से होता भिन्न।
तब-तब जगकर पावन भाव-
देते मन को मधुर पडाव।

यह पडाव है अद्‌भुत राग-
इसमें कविता का अनुराग।
दुख में, सुख में होता ज्ञात-
खिलने लगता मन-जलजात।

मेरा एक यही आधार-
टिका इसी पर है ससार।
जुडा इसी से सब सम्बन्ध-
यही ज्योति है, यही सुगन्ध।

कविता देवी दो आशीश–
गाऊँ भजन झुकाकर शीश।
रहो हृदय में तुम आबाद
मिले तुम्हारा आर्शीर्वाद।।

अठारहवां सर्ग

•

विगत बडा सुन्दर लगता है-
मन में राग जगाता,
इसके स्वच्छ हिंडोले पर चढ-
जीवन गीत सुनाता।

जगती इससे नयी कल्पना-
नया-नया सब लगता,
शून्य कक्ष में बैठा खग भी-
इसकी धुन पर जगता।

किन्तु आज मैं जहाँ खडा हूँ-
वहाँ न कोई आता,
इस टीले पर आकर कोई-
कभी नहीं सुस्ताता।

आना-रूकना और किसी को-
कुछ विश्राम दिलाना,
सम्भव नहीं किसी को जग में-
ऐसी टीला पाना।

टीला क्या बस मरू थल समझो
आज जहाँ मैं आया,
समय-चक्र ने खीच यहाँ तक-
मुझको है पहुँचाया।

रोग-रूग्ण है काया जिसमें-
भीषण दर्द भरा है,
शल्य-कर्म हुआ है कितना-
उसका घाव हरा है।

ऐसा था यह रोग कि जिससे-
किसी तरह बच पाया,
शक्ति नहीं वाणी में, मैंने-
स्वर का तत्र गवाया।

शब्द घुमड कर रहते मन में-
कुछ भी बोल न पाता,
शील-पाट पर लिख-लिख कर मैं-
इगित से बतलाता।

दुसह वेदना सह कर ही मैं-
जीवित आज बचा हूँ,
अपनी कविता के छन्दों का-
बनकर साज बचा हूँ।

स्वय मुझे है ताज्जुब, मैने-
कैसे जीवन पाया?
महारोग के उस फदे से-
कैसे बाहर आया?

और तभी आँखों के आगे-
पुत्र-वधू आ जाती,
बनकर मेरी शक्ति वही तो-
मुझको रही जिलाती।

नाम सुधा है-सचमुच अमृत
उसने दान किया है,
मेरे मरणासन्न प्राण को-
जीवन-दान दिया है।

उसकी सेवा और तपस्या-
भूल नहीं मैं पाता,
लगता मेरे हित ही अब तक-
रक्खा उसे विधाता।

उसके दुख को देख सभी की-
आँख स्वयं भर आती,
सुनकर करूण कहानी फटती-
पत्थर की भी छाती।

फिर भी सब कुछ भूल उसी ने-
अब तक मुझे जिलाया,
शव-सा मैं नि चेष्ट पडा था-
उसने मुझे जगाया।

सेवा-भाव स्वय बन जाए-
जैसे कोई प्रतिमा,
वैसे ही यह बाला मेरे-
जीवन की है गरिमा।

लगती मेरे मन में उतरी-

बनकर कोमल कविता,

ज्योति दृगों में मन में पावन-

गगा जैसी सरिता।।

उन्नीसवां सर्ग

सृष्टि समूची रगमंच है-
अग जग तक अभिनेता हैं,
कोई कहीं पराजित है, तो-
कोई कहीं विजेता है।

अपनी–अपनी अलग भूमिका–
सभी निभाया करते हैं,
कोई आके रोते, कोई–
रो के गाया करते हैं।

अपने वश में यहाँ न कोई–
सब परवश हैं बेबस हैं,
कोई सुत्रधार है जिसके,
कर में जग का सर्वस है।

जो कहते सब हम करते हैं–
दम्भी हैं पाखण्डी हैं,
ऐसे ही जन बिकते जग में–
खुली हुई सब मण्डी है।

कोई मानव क्या कर सकता–
उसमें ताकत कितनी है?
बल–विवेक औ बुद्धि मनुज की–
चींटी से भी कमती है।

करने वाला अन्य दूसरा–
सब को नाच नचाता है,
लेकिन उसको खुली दृष्टि से–
देख न कोई पाता है।

जिस पर गुरू की कृपा बरसती–
सदा वहीं मुस्काता है,
उसका सारा सशय मिटता,
सभी भेद खुल जाता है।

मैं अदना–सा प्राणी जग का–
पल–पल विह्वल होता हूँ,
तनिक कहीं जो सकट आया,
धैर्य हृदय का खोता हूँ।

लेकिन सब कुछ धीर भाव से–
सहना है आसान नहीं,
गुरू की कृपा बिना इस जग में–
मिलता कोई ज्ञान नहीं।

वही कठिन सकट सहने की–
शक्ति अपरिमित देते हैं,
समय–समय पर अपनों की भी
कडी परीक्षा लेते हैं।

दुख के बादल घिरते ही हैं–
कोई कम तक भागेगा,
सृष्टि–नियम का कोई जग में–
कैसे कब तक त्यागेगा।

इसीलिए जो आता उस पर-
कुछ भी ध्यान न देना है,
प्रभु का परम प्रसाद समझ कर-
ग्रहण उसे कर लेना है।

सुख भी उसका दुख भी उसका-
अपना कुछ भी शेष नहीं,
अपनेपन का भाव हृदय में-
रखना है लवलेश नहीं।

तभी कष्ट हम झेल सकेंगे-
जीवन सुखद बनायेंगे,
करूणाकर का पावन-अमृत-
धरती पर बरसायेंगे।

कविता का साधन तो मन से-
केवल प्रभु-आराधन है,
छन्द-छन्द में गुँथे शब्द तक-
निर्मल दिव्य प्रसाधन है।

एक यही है साथ कि जिससे-
संकट भीषण टाल सका
वज्रपात के अन्धकार में-
मन को तनिक सँभाल सका।

★ ★ ★

कवि ने। तेरी जय हो तुझ पर-
सब दिन मुझको गर्व रहा,
विमल प्रसाद तुम्हारा मेरे-
वैभव में है सर्व रहा।।

बीसवां सर्ग

समय सुहाना जब आता है-
दुनिया हँसने लगती,
अन्धकार के शून्य कक्ष में-
दीप-शिखा खुद जगती।

मलियानित के झोंकों पर तो
फूल-कुसुम लहराते
लेकिन लू की दाहों में वे-
नहीं झुलसने आते।

चाँद गगन में खिलता, भू पर-
तभी चकोरा आता,
हरे-भरे विटपों पर पक्षी-
अपना नीड बनाता।

जहाँ रेत उडती रहती है-
वहाँ कहाँ हरियाली?
वहाँ न कोई मालिन मिलती
हार बनाने वाली।

पुरजन-परिजन सब होते हैं-
अच्छे दिन के साथी,
बिना स्नेह के कभी न जलती
दीये की भी बाती।

★ ★ ★

अच्छे दिन तो अच्छे ही हैं-
इनकी बात निराली,
बुरे दिवस की हलचल होती-
रग दिखाने वाली।

अच्छे दिन में सब आते हैं-
बुरे दिवस में जाते,
आने-जाने के ये नर्त्तन-
सब के भाव बढाते।

बुरे दिवस के अजन से ही-
दृष्टि सभी की खुलती,
इस धरती पर वस्तु नहीं है-
इससे मिलती जुलती।

★ ★ ★

अच्छे दिन तो हृदय-शून्य है-
ज्ञान जगा ना पाते,
बुरे दिवस ही व्यक्ति-व्यक्ति की-
सब पहचान बताते।

किसमें क्या सद्भाव जगा है-
किसमें क्या लोलुपता ?
कहाँ हृदय में ज्वाला जलती-
कहाँ हृदय में ममता ?

सब का सच्चा चित्र दिखाता-
बुरे दिनों का आना,
इसके आगे कभी किसी का-
चलता नहीं बहाना।

★ ★ ★

याद मुझे है, शून्य-कर्म थे-
जिस दिन होने वाले,
कुछ आए थे बडे स्नेह से-
बनकर रोने वाले।

कुछ हिसाब चुकता करने को-
आए थे अकुला के,
कुछ आए औं भागे झटपट-
क्षण भर को सुस्ता के।

यही हाल है सभी जगह का-
ऐसे ही जग चलता,
अपने स्नेह-भरे रहने पर-
अपना दीया जलता।

★ ★ ★

बुरे दिनों में लोग निकट के-
कुछ पहचाने जाते,
अपने और पराये जन के
अन्तर जाने जाते।

जो हो, अब तो भूल गया सब-
याद नहीं है बाकी,
इस दुनिया के पंकिल पथ पर-
चलता है एकाकी।

लेकिन है अवलम्ब कि कविते।
साथ न तेरा छूटे,
अब तक जो सबध बना वह-
नहीं कहीं से टूटे।

इक्कीसवां सर्ग

हर मौसम में कविता ने ही-
मेरा साथ दिया है,
गहन तिमिर में-अपने कर में-
मेरा हाथ लिया है।

नैया थी मझधार पडी तब-
इसने पार लगाया,
अन्तर-तर की जड़ता में भी-
इसने मुझे जगाया।

इसीलिए विश्वास प्रबल है-
रात कटेगी निश्चय,
इस रजनी के बाद कहीं से-
आएगा अरूणोदय।

प्रभु की कृपा रहेगी जब तक-
जो होगा सह लूँगा,
प्रभु की जैसी इच्छा होगी-
वैसे ही रह लूँगा।

जय-जय कविते। मुझ में अपनी
शक्ति अदम्य जगाओ,
उतरो मेरे हृदय-पटल पर-
अपना रूप दिखाओ।

विकसित होकर मानव खुद ही-
अपना भाग्य बनाता,
अम्बर तक के उच्च शिखर पर-
अपना केतु उड़ाता।

इच्छा मन में रहने पर ही-
प्रभु-प्रसाद मिल जाता,
मरुथल के सूने आँगन में-
फूल नया खिल जाता।

इच्छा है, सद्भावों का मैं-
सबको गीत सुनाऊँ।
मानवता के पुण्यदय का-
जगमग दीप जलाऊँ।

•

रहे न ईर्ष्या-द्वेष भुवन में-
प्रेम-भाव लहराए,
भटक रहे प्राणी को मेरी-
कविता राह दिखाए।।

समाप्त

•